International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 29-09-2021, Accepted: 15-10-2021, Published: 29-10-2021
Volume 7; Issue 5; 2021; Page No. 111-115

संजीव के उपन्यासों में आदिवासी चित्रण

दीपा त्यागी[1], ममता[2]
[1] प्रोफ़ेसर एसोसिएट, हिंदी विभागाध्यक्षा, इस्माईल नेशनल महिला पी. जी. कॉलिज, मेरठ, उत्तर प्रदेश, भारत
[2] शोधार्थी, इस्माईल नेशनल महिला पी. जी. कॉलिज, मेरठ, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
आदिवासी समाज में संघर्षों की परंपरा हजारों सालों से चली आ रही है। इनके जल, जंगल व जमीन पर जब दूसरे समुदाय ने आक्रमण किया तब–तब इन्होंने विद्रोह व आंदोलन किए। आदिवासी की वेदना इतनी गहरी है कि मनुष्य की आत्मा चीत्कार करने उठती है वह सदैव शोषित होता रहा है अपने अधिकारों के लिए लड़ता रहा है वह आज भी दयनीय स्थिति में है।
संजीव जी ऐसे कथाकार व उपन्यासकार है जो उपेक्षित व शोषित होते आदिवासी की दयनीय स्थिति को साहित्य के माध्यम से प्रकट करते हैं। संजीव का कथा साहित्य आदिवासी को स्वर देता है जो आज तक उपेक्षित था वह साहित्यकार की वाणी पा कर अपनी चेतना को जगा कर समाज में अपनी अलग पहचान बनाने में सक्षम हैं।
संजीव के उपन्यास पाँव तले की दूब, जंगल जहाँ शुरू होता है, धार, सावधान! नीचे आग है, सर्कस इत्यादि उपन्यास हैं जो आदिवासी की मेहनतकश, अभावग्रस्त जिंदगी के दुःख दर्द को साहित्य के माध्यम से चित्रित करते हैं। उनका लेखन सिर्फ दयनीय व पीड़ित स्थितियों का चित्रण ही नहीं करता वरन् शोषित व उपेक्षित होते लोगों का विरोध भी भरसक करता है उनका साहित्य उपेक्षित आदिवासी को वाणी देता है। जो भविष्य में प्रांसगिक है।

मूलशब्द: आदिवासी चित्रण, विद्रोह व आंदोलन, कथाकार व उपन्यासकार

प्रस्तावना

संजीव जी बीसवीं सदी के उत्तार्द्ध में नई भावभूमि को लेकर उभरे लेखक हैं। वे कहानी ही नहीं उपन्यासों में भी समकालीन जीवन के यथार्थ को गहराई से रेखांकित करते हैं। वे पिछड़े उपेक्षित व वर्जित क्षेत्र में गुमनाम जिंदगी जी रहे मेहनतश, शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व करते दिखायी देते हैं। अपनी चेतना के बल पर अपनी अलग पहचान बनाने व जुझारू जिंदगी का सामना करते हुए साहस का परिचय देते दिखायी देते हैं। आदिवासी समाज के बीच जा कर उनके सांस्कृतिक–राजनीतिक कार्यों को आधार बनाकर अपनी लेखनी चलाते हैं आदिवासी को लेकर उनके उपन्यास धार (1990) , पाँव तले की दूब (1995), जंगल जहाँ शुरू होता है (2000), सावधान! नीचे आग है इत्यादि को लिखकर अपनी अलग पहचान बनाते हैं तथा आदिवासी में चेतना का बिगुल बजाते दिखायी देते हैं 'धार' उपन्यास एक वास्तविक क्षेत्रीय घटना पर आधारित उपन्यास है जिसमें एक और यदि समाज के खिलाफ नीतियाँ हैं तो वहीं दूसरी और राजनीति कोयला, माफियों के गठजोड़ को बखूबी दिखाया गया है कोयलांचल क्षेत्र में 'महेन्द्र बाबू' नाम का व्याक्ति तेजाब का कारखाना खोलता है पूरी बस्ती के लिए संकट का कारण है वहाँ के व्यक्तियों को दमे, खांसी, कैंसर इत्यादि बीमारियों से ग्रस्त कर देता है जिसका विरोध 'मैना' करती हैं लेकिन पिता (टेंगर) व पति (फोकल) के द्वारा गवाही देकर जेल भिजवा दिया जाता है क्योंकि महेन्द्र ने चालाकी से उसके पिता (टेंगर) को वहाँ चौकीदार रख लिया है वास्तविक कथा तो जेल से छूटने के बाद शुरू होती है जेल में जेलर के यौन आचरण के परिणाम स्वरूप उसे बच्चा पैदा होता है, उसे रिहाई के वक्त वहीं छोडकर आ जाती है लेकिन जेलर कबाड़ी मंगर को जल्दी रिहा करने का लालच देकर जबर्दस्ती उसे उसका बाप घोषित कर देता है बाद में मैना बच्चे को पहचान कर मंगर के साथ बाँसगड़ा में आती है। आदिवासी क्षेत्र में होकर भी बाँसगड़ा पूरी तरह से संथालों का गांव है उसमें मिली–जुली आबादी वाले लोग भी हैं लेकिन संथालों की संख्या अधिक मात्रा में है मैना के पति फोकल से उसे बच्चे है टिपका (12 साल का) लडकी सितवा छोटा बेटा लुना है। हैदर मामा पूरी बस्ती का मामा है, जबकि बस्ती के सभी लोग उसे दलाल कहते हैं परंतु वह मैना का पक्ष लेता है, कथा इन दो पक्षो के बीच संघर्षमय गाथा है व मैना इस कथा में केन्द्रीय भूमिका के रूप में पाठको के सामने आती हैं उसके रूप से शोषण, यौनचार, अत्याचार, ओझाई के रूप में स्त्री शोषण की दयनीय कथा है जिसमें उसकी माँ को डायन कह कर मार डाला लेकिन उसे उसकी माँ की तरह डायन बनाने में सफल नहीं होते वह ओझा की गरदन पकडते हैं और हलाल होते बकरे की तरह छटपटाने लगता है ओझा, ''खा जाहिर थान का कसम! खा मारौ बुरू का कसम! खा बधना देवी का कसम कि तू घूस नही खाता है सच बोला रआ है। अरे ओकरा में तो तोर चेहरा लोक रहा है तो तू हो गया डाइन? तोरा घर में हम भेड़ मार के फेक दे तो तू हो गया हत्तियारा.....?'' देवताओं की साखी भराते ही भीड़ का चरित्र दरक गया मोड़ल, परेमा और कुछ अन्य लोगो ने कहा, ''ठीक! ठीक ईतो बोला मैना, ओझा अगर सच्चा है तो खाये कसम।''[1] किस तरह मैना को दलाल लोग डायन घोषित करना चाहते हैं उसी के लोगो के सामने लेकिन उसमें साहस की कमी नहीं है वह ओझा तक की गर्दन पकड़ कर सब को झूठा साबित कर देती है। दलाल लोगों पर एक तमाचे का काम करता है। संथाली मैना पढ़ी–लिखी नहीं है लेकिन वह अन्य से भिन्न है । पिता पर तेजाब डालने से हुई मौत को वह चुपचाप जलाने का विरोध करती है। (पति) फोकल महेन्द्र बाबू की ओर से आसनसोल के बस–स्टैण्ड का काम लेकर आता है तो वह फोकल से बात करने तक को मना कर देती है कि हम दलाल से बात नहीं करती हैं।
आदिवासी महिला 'मैना' एक माँ, पत्नी, बेटी सभी की भूमिका अच्छे से निभाती है वह कहती है कि अतीत भले ही कितना घिनौना क्यों ना हो भविष्य को वैसा नहीं होने देगी यह उसकी

चेतना ही है कि वह हर दुःख सहकर भी बच्चों को पढ़ाना चाहती है जब मामा पूछते हैं ''का रे मैना सेठ कितना जमा किया?'' टाल देती मैना, ''अभी कऑ.....? अभी तो इत्ते लोग का पेट भर जाय, पुलिस, गुंडे से बचे, ये ई बहुत है। अभी तो बच्चा सबको देखना है, सितवा का शादी है फिर टिपका –लुत्ता को पढ़ा–लिखा कर आदमी बनाना है।''[2] उसकी सकारात्मक सोच वास्तव में तारिफ ए काबिल है जो हर तरह से शोषित होने के बावजूद भी साहस का परिचय देती है दलाल, पुलिस, अपनों का, सभी का विरोध झेलती हुई नारीत्व को ऊँचा उठाती है।

बाँसगड़ा छोड़ बेरमो जाती है और फिर वापिस आकर अविनाश शर्मा और उसके सहकर्मियों का बामपंथी दल बस्ती के लोगों को संगठित करता है जो अपनी 'जनखदान' को कानूनी तौर पर खड़ा करना चाहता है और दलालों की जंजीरों से मुक्त करना चाहते हैं यह काम वह सब को संगठित होकर करते भी हैं जो कोयला खदान में कोयला खोद कर करते हैं ''यह शिशुकण्ड की चीत्कार मोरम गांव के मंडल लोगो की थी.....लोगों की थी..... .....लोगों ने कोयले को उठाकर चूमा और मस्तक पर लगाया।''[3] शर्मा और मजदूरों के सामूहिक प्रयास से जन खदान खडी की जाती है जिसमें हर मजदूर बेसहारा को काम के साथ–साथ अस्पताल पाठशाला सहित अन्य सुविधाओं का भी मुहैया कराया गया है जिससे पूरे मजदूर वर्ग में खुशहाली का माहौल है जिससे दलाल लोगों की नींद, चैन गायब है। जिसे, पर गैर कानूनी बता कर तोड़ दिया जाता है शर्मा के शब्दों में '' पार्टी चाहे गलत कहे या सही सरकार चाहे स्वीकारे, चाहे नही, हम मर जॉय या मिट जॉय, जनखदान तक को कोई बहशी मटियामेट कर दे लेकिन लोगों को यह सोचने का मुद्दा तो हम दे ही जायेंगे कि एक दिन ऐसा भी आया था, जब मजदूरों ने खुद सत्ता संभाली थी जब लुटेरों तक को जान को खतरा महसूस होने लगा था, जिन्होंने वार किया, उन्होंने मुँह की खायी, न कोई मालिक था, न कोई सूदखोर।''[4] वास्तव में संजीव ने बहुत ही करीब जा कर आदिवासी लोगों को जाना उनके जुझारू संघर्ष, कोयलांचल क्षेत्र में काम करते कामगारों व स्त्री की दयनीय स्थिति का प्रत्यक्ष चित्र उकेरा हैं जो लोगो को सोचने के लिए मजबूर करेगा कि एक ऐसा वर्ग है जो सदियो के संताप से पीड़ित है जिसमें चेतना आज भी है और उनके जीवन में दिखायी भी देती है अरूण कमल कविता की पंक्ति सत्य को उद्घाटित करती हैं –

'सारा लोहा उन लोगों का अपनी केवल धार, को चरित्रार्थ करती है।'

संजीव जी का उपन्यास 'सावधान नीचे आग है' ऐसा हृदय विदीर्ण उपन्यास है जिसे पढ़कर हृदय चीत्कार करने लगता है। झारखंड़ के धनबाद जिले की चंदनपुर कोयला खदान पर आधारित उपन्यास प्राकृतिक संसाधनों के असीमित शोषण, विस्थापन, कृषि भूमि की दुर्गति, कोयले खदान से निकलने वाली मिथेन गैस से होते जलवायु प्रदूषण, मानव लालसा की बलि चढ़ते निरीह जीव, जल–संकट इत्यादि का सजीव चित्र लेखन ने पाठको के सम्मुख प्रस्तुत किया है। ''मनुष्य को सबसे पहले मानव होना चाहिए, जैसा कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि ''मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोद्दीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को पर दुःख कातर और संवदेनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।''[5] मानवता तो तार–तार हो रही है ऐसा हम संजीव के उपन्यास 'सावधान नीचे आग है' में देख सकते हैं। किस तरह कोयला खदानों में काम करने वाले जिंदगी की भीख मांगते दिखायी देते हैं इंसान इतना निर्दय कैसा हो सकता है जब खदान नीचे धंस रही थी तो कोई मदद के लिए सामने नहीं आता। कई दिन गुजरने के बाद भी खदान में धंसे लोगों की कोई खोज खबर नही ली जाती तो क्या ये नाइंसाफी नही है, 'उधम' की बात को काटते हुए 'मेवा' कहता भी है –''सच तो यह है भैया कि जिनके हाथ में कानून और पावर है सब चोर हैं। मेहनत और ईमानदारी की कोई कदर नहीं। जो लूट रहा है, लूट रहा है, जो बिला रहा है, वो बिला रहा है।''[6] सच में लेखक ने उपन्यास के माध्यम से स्पष्ट रूप में व्यक्त किया है कि मानवता लोगों की मर रही है जिनके हाथ में शक्ति है या जो ऊँचे पदों पर आसीन है उनका जीवन ही सार्थक है अन्य तो कीड़े–मकोड़े की तरह ही हैं जो खदान में काम करते–करते एक दिन उसी में दब कर मर जायेंगे और ऐसा ही होता भी है क्योंकि ''झरिया में पानी महँगा और दुर्लभ है। सस्ती और सुलभ शराब और उससे भी सस्ता है आदमी का खून''[7] मनुष्य का कोई मूल्य नहीं है जो एक दिन काल की गर्त में समा जाता है और उसकी कोई सुध लेना वाला भी नहीं रहता लेखक ने उपन्यास में एक ऐसा वर्ग का सजीव रेखांकन किया है जो हृदय पर एक अमिट छाप छोड़ता है मंगतू व अन्य लोग जो नीचे धंसे थे उन्हीं में से एक दृष्य जो हृदय को विदीर्ण कर देता है ''अब तो जो कर लिया, कर लिया। एक बार किया तो भी, और सौ बार किया तो भी। कपालिनी मैया भी तो खून पीती है मंगतू को छिमा करो, मैया..... मै तो जीन के लिए मुर्दा खा रहा हूँ, लोग तो जिंदा आदमी खा जाते हैं.....। अँधेरे में 'चपड़–चपड़' की आवाज! उधम का शक अब यकीन बन गया, बेहतह घबरा गया। तो क्या सब के सब उसे मारने का षड़यंत्र कर रहे हैं? लड़खड़ाकर उसने आखिरी लैम्प टटौली और रिलाइटर से पुनः जला दिया 'बाप रे.....ऽऽ!'' सियार की तरह झुका हुआ है मंगतू मुकीद की जाँघ पर। अचानक रोशनी होते ही अचकचा जाता है मुँह में मांस लिए हुए... .....। भूख सही नहीं गई ..... पन्द्रह दिन में कपड़ों काठ और पानी के सिवा कुछ भी तो नहीं गया पेट में।''[8] मनुष्य का हृदय चीत्कार करने लगता है जब वह इस दृष्य को पढ़ता है कि खदान में दबे लोगों को 15 वें दिन तक भी कोई खोज खबर नहीं लेता सभी बारी–बारी से अपनी मौत का इंतजार करते हैं इस से बड़ा दुःख मनुष्य के लिए क्या होगा? जो अपनी मौत का इंतजार करता है भूख ने उसे भेड़िया बना दिया है लेकिन भेड़िया बनकर भी वह अपनी जान नही बचा पाता लापरवाही व अनदेखी से खदान में धंसे लोग मौत की गर्त में समा जाते हैं सहायता जब आती है जब उनकी शिनाख्त तक करने में दिक्कत होती है क्या मनुष्य का खून इतना सस्ता है? उसका कोई मूल्य नही है यह उपन्यास में स्पष्ट रेखांकित होता है कि मनुष्य की कीमत कुछ भी नहीं है संजीव का उपन्यास पढ़ते समय पाठको के हृदय चीर देता है कि क्या वास्तव में मनुष्य की कीमत कुछ नहीं है।

आदिवासियों की समस्याओं पर ए0 आर0 देसाई का वक्तव्य है कि ''जनजातियों की समस्याऐं कृषि मजदूरों, कृषकों और कारीगरों की समस्याओं जैसी हैं। मजदूर, किसान या कारीगर जहाँ कहीं काम करते हैं, मालिक उनका शोषण करते है। ''बहुत सीधा–सादा सत्य यह है कि हमारी जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग ऐसा है जो कृषि से जीविकोपार्जन करता है और जिसका शोषण विभिन्न तरीकों से साहूकारों, अनुपस्थित जमींदारों और बिचोलियों द्वारा होता है।''[9] आदिवासियों का शोषण ना हो इसके लिए वैज्ञानिक तरीके से उपाय खोजना ही होगा जिससे यह भी अपना जीवन अन्य लोगो की तरह से जी सके व अपना अस्तित्व बचा सकें।

भारतीय समाज सबसे प्राचीन सभ्यताओं में से एक है धीरे–धीरे समाज में अनेक परिवर्तन आये लेकिन इतने बड़े देश में संपूर्ण परिवर्तन होना संभव नहीं है कुछ ना कुछ छूट ही जाता है और जो समाज से अनछुआ रह जाता है विकास की दौड़ में सभ्यता कोशो दूर छूट जाती है। इस पीछे छूटे समाज को भूमण्डलीय दौड़ से अलग हट कर एक पहचान कराना, उनकी समस्याओं से

रू–ब–रू कराना आवष्यक है वर्तमान की इस भागा–दौड़ जिंदगी में किसी की भी सांस्कृतिक विरासत को संरक्षण देना व विकास के लाभ उन तक पहुँचाना किसी भी चेतनाशील साहित्य के सरोकार में शामिल होना चाहिए। इसी चेतनाशील मनःस्थिति का परिचय कराता उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है'', पिछले वर्षों में विभिन्न हिंदी लेखकों ने परित्यक्त, अनछुए, उपेक्षित, वर्जित क्षेत्रों में भ्रमण किया जनजातियों के अनछुए पहलुओं व जो उपेक्षित थे या कहे सरकार द्वारा उनकी तरफ ध्यान न देना इत्यादि कारणों से आज भी अपनी पहचान के लिए दर–दर की ठोकरे खा रहे हैं। इसी का वर्णन करता संजीव जी का उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है' एक थारू जनजाति की कथा बया करता है जो 'मिनी चंबल' के नाम से कुख्यात पष्चिमी चंपारण (बिहार) की गाथा का वर्णन करता है।

चंपारण का 'जंगल जहाँ दूर–दूर तक फैली नदी, पहाड़ व डाकुओं के साये में पूरा चंपारण वहां की जनजातियों, डाकूओं, पुलिस बीहड़ों से साक्षात्कार करता उपन्यास, जंगल अपने भीतर अनेकों ऐसी पगडंडियों को खोलता और बंद करता है जिस से उपन्यास में एक रोमांचता बनी रहती है। जंगल में बाघ, भालू, चीते अन्य हिंसक जानवर है जो डाकू–पुलिस की कथा का साक्षात्कार कराते हैं।

उपन्यास की कथावस्तु पुलिस व डाकू के परस्पर अन्तर्विरोधों को व्यक्त करती है। किस तरह एक व्यक्ति पुलिस और डाकू के बीच रात–दिन पिस रहा है और उसके पास एक ही रास्ता बचता है या तो वो पुलिस, जमींदार ठेकदारों के हाथों की कठपुतली बना रहे या उसके खिलाफ जंगल की शरण ले कर डाकू बन जाये 'कुमार' एक ईमानदार पुलिस उप अधीक्षक है जिसकी पॉस्टिंग यहाँ (चंपारण) होती है जिसे 'ऑपरेशन ब्लैक पाइथन' (जिसे गांव वाले डाकू–मारू हल्ला कहते हैं) नाम दिया गया है, कुमार डाकूओं के उन्मूलन के लिए एक महत्वाकांक्षी, कर्त्तव्यनिष्ठ, प्रगतिशील उप अधीक्षक के रूप में अपने सभी कर्त्तव्यों को निष्ठा से निभाता है। कुमार जब शुरूवाती दौर में मींटिग में शामिल होता है जब डाकुओं के उन्मूलन के लिए उनका समूल नष्ट करने का बखान होता है ''डाकू समस्या का यह अजगर किसी को यक–ब–यक शेष नहीं करता, थोड़ा–थोड़ा कर निगलता है ये किसी को किडनैप कर मँगवा लेते है फिर उसके घरवालों से फिरौती माँगते हैं –लाख, दो लाख या मात्र कुछ हजार। हैसियत समझकर या कभी–कभी हैसियत से भी ज्यादा। असामी दे दे तो भी तबाह, न दे तो भी। न देने पर मार डालते हैं। हत्या, अपहरण, बलात्कार और अन्य आपराधिकी के ग्राफ यहाँ आप देख रहे हैं वास्तविक संख्या इनसे कहीं ज्यादा है।''[10] पुलिस को डाकुओं की स्थिति से अवगत कराया जा रहा है कि किस तरह पुलिस अपनी रणनीति बनाये किस तरह इन से मुक्ति दिलाये क्योंकि उत्तर में नेपाल व पष्चिम में उत्तरप्रदेश व बीच में दुर्भेध जंगल, पहाड़, कन्दराऐं व नारायणी नदी जो डाकूओं की सहायता में कारगर हैं, बीहड़ इलाके में बाघ, चीता, भालू, सांप इत्यादि का प्रकोप जो डाकूओं के उन्मूलन में समस्या बना हुआ है। बिसराम बहू की बेटी को सांप काट लेता है जो रात में औझाई कराने के लिए बरसात में जंगल–जंगल भटकते रहते हैं। अन्त में वह मर जाती है जो जंगल की भयावह स्थिति का बयान करती है।

बिसराम बहू को डाकूओं को खाने खिलाने के कारण पुलिस उसे उठा कर ले गयी है बिसराम बहू कर ही क्या सकती है एक तरफ डाकू तो दूसरी तरफ पुलिस जो उनका खाना–पीना हराम रखते हैं खेत बंधक पडे हैं मालिकारो के यहाँ जो मालिकारों ने हड़प लिये हैं, बिसराम का भाई काली नहर पर ठेकेदार का काम करता है ईमानदारी से, लेकिन उसके पैसे भी ठेकेदारों ने हड़प लिये हैं जमींदारों व ठेकेदारो ने मिलकर उन्हें पलायन करने के लिए मजबूर कर दिया है बिसराम कहता भी है कि भाग कर नेपाल चले चलते है लेकिन बिसराम बहू कहती है डाकु या पुलिस जाने ना देगी व मजबूर है डाकूओं को खाना खिलाने के लिए, लेकिन पुलिस मालिककार को बंद नहीं करेगी सारा अत्याचार गरीब मजदूर पर करेगी यह कहाँ का कानून है बिसराम बहू को रात–भर थाने में मारा–पीटा जाता है उस पर अत्याचार किए जाते हैं महीनों खाट पकड़ लेती हैं थाने से वापस आने पर बिसराम बहू पुलिस के अत्याचार औरतों को बताते हुए कहती है ''पूछा तुम डाकू का मदद करता है हम बोले? नहीं। ऊ बोले, तुम खाना बनवा के बराबर भेजता है, रात में खटिया पे लेके सोता है। हम बोले, हमको मारने लगे तो के बचाने आएगा? ऊ गाली दिया। हम चुपचाप सुनते रहे। फिर बोला तुम काहे आए, तुमरा जवान लड़की नहीं है? तब तो हमरा आग लग गया, बोले, है। ऊ बोले, तो जाओ, भेज दो। केस खलास कर देंगे। हम बोले, आप जाइएगा उसके पास? ऊ बोले जाएँगे? हम बोले, ऊ भगवान के पास गिया, चले जाइए। बस इसी पे लगे मारने हमको। दारू पिए हुए थे। बहोत मारा, बहो.....त! अब हम किसी काम के नहीं रह गए। नँय बचेंगे हम। हमारा बच्चा का होगा, हे राम!''[11]

थारू जनजाति के लिए दोनों और कूआं व खाई है एक तरफ पुलिस, जमींदार ठेकेदारों व दूसरी तरफ डाकूओं के चंगुल में फंसे हुए हैं, जिनका शोषण किया जा रहा है परशुराम डाकू जो मंत्रियों के साथ मिलकर राजनीति में उनका सहयोग दे रहे उन्हीं के बलबूते वे जीतते आ रहे है। किस तरह उनका शोषण हो रहा है एक तरफ मंत्री जी डाकूओं को शरण दे रहें है दूसरी तरफ पुलिस डाकूओं को पकड़ने के लिए ऑपरेशन चला रही है कुमार को परशुराम धमकी भरा पत्र लिख कर भेजता है कि तुम्हें हिरणाकष्यप की तरह से मार देगें जब वह मंत्री जी के यहाँ आये दो डाकू गोकुल व बिन्दा का मार गिराते हैं।

किस तरह थारू आदिवासी का आर्थिक, शारीरिक, मानसिक शोषण हो रहा है उनकी आंखों के सामने ही उनकी माँ, बहन, बेटी की इज्जत तार–तार की जा रही है। जब 'मलारी' का यौन शोषण किया जाता है तो वह कह उठती है ''बस हो गया? बस हो गई पूछताछ,मिल गई बंदूक! बस इसी के लिए कुत्ते की तरह आए थे दबे पाँव, आपकी औरतें तो इज्जतदार है, ऊँची जात के बड़े लोग! हम गरीब नीच जाति की औरतों की क्या इज्जत? खुला दरवाजा है, जो चाहे मुँह मार ले। तुम इतने दिन रूकें कैसे रहे–यही आष्चर्य है। बस यही तुम्हारी इंतहाँ थी!''[12] आष्चर्य होता है किस–किस तरह आदिवासी महिला का डाकू से लेकर लोकतंत्र के रखवाले सफेदपोश तक शोषण कर रहे हैं। आज वे धड़ले से नेपाल, पटना व अन्य देशान्तरो तक भेड़ बकारियों की तरह खरीद–फरोख्त की जा रही है। जोगी जो कि गाय–भैंस बकरी यहाँ तक की औरतों तक को नहीं छोडता ऐसा कोई कुकर्म नहीं जो उसने नही किया।

थारू आदिवासी स्त्रियों का सभी ने शोषण किया जिसने चाहा उसी ने नीच जाति समझ कर यौन शोषण किया। इस उपन्यास में पिछड़ी जातियों विशेषकर थारू जनजाति के माध्यम से लोकतंत्र की जड़ो को तलाशने का कार्य किया गया हे उपन्यास में बिहार की थारू जनजाति के जीवन संघर्ष को सहानुभूतिपूर्वक उभारा गया है कि किस तरह मौजूदा लोकतंत्र में समाज का एक वर्ग आज भी शोषित, पिछड़ा, अभावग्रस्त व दमन उत्पीड़न का शिकार है वह आज भी इसी शोषण अत्याचार के जाल में फंसा हुआ है इससे बाहर नहीं आ सका है उसकी जमीन उस से छीन कर उसे बेदखल कर दिया गया है जब पुलिस उन पर अत्याचार करती है तो वह अपने घर–खेत छोड़कर पलायन कर जाते हैं तब पुलिस अधिकारी उनकी जमीन को किस तरह से जमींदारों के रखवाले रख देते हैं जो आज तक रखवाले ही बने हुए हैं दिल्ली पटना से जवाब मांगा जाता है कि जो पलायन कर गये उनकी खोज चल रही है ''लेकिन तब तक उन लोगों का खेत–खेतार कौन देखेगा? 'गौरमिंट' उसका भी इंतजाम करेगी

भाई। और सचमुच 'गौरमिंट' ने इंतजाम कर दिया था।

'एक प्रतिष्ठित और जिम्मेदार नागरिक होने के नाते, जब तक मकरंदापुर के गांव वाले लौट नहीं आते, तब तक इनके खेतों के संरक्षक आप हुए लल्लन बाबू, ताकि कोई इन पर कब्जा न जमा ले।' जिला धीश ने लल्लन बाबू से कहा।''[13] सच्चे अर्थों में इनका शोषण। जमींदारों व पुलिस के अत्याचारों ने इनका इनसे सब कुछ छीन लिया इन्हें जंगल ने अपनी शरण में लिया ये मजबूर हुए जंगल में रहने के लिए। आज तक जंगल से निकल कर सभ्य नहीं हो पाये इनकी खेती जो आज तक इनके पास वापिस नहीं आयी जमींदारो ने अपना मलिकाना हक जमा कर अपने अधिकार क्षेम में कर ली।

आदिवासी आज तक सभ्य नहीं हो पाया इसका सबसे बड़ा कारण है हमारा लोकतंत्र व लोकतंत्र के रख वाले इनका शोषण करने से बाज नहीं आते। बिसराम का भाई 'काली' जो सीधा–साधा, किस तरह डाकू बनने के लिए विवश हो जाता है क्योंकि काली बचपन से ही शर्मिला स्वभाव का था जब उसको ब्याह के लिए देखने वाले आते हैं तो वह खाट के नीचे घुस जाता है बिसराम भैया उसे जबरदस्ती निकाल कर लाते हैं औरतें कहती हैं इसे तो भगवान ने भूल वश मर्द बना दिया है। स्कूल में मास्टर साहब भी कहते हैं 'मर्द बन काली मर्द!''[14] वह चुपचाप रहता, मन ही मन सोचता और घुलता रहता था। मालिकार के यहां नौकारी की, अत्याचार चुपचाप सहता रहा, नहर पर काम करने पर ठेकेदारों ने पैसा नहीं दिया भाई–भाभी की हालत को देखकर मन ही मन कुढ़ता रहता, काम की तलाश में, और जब वह पांडे के यहां भैसों गायों की देखभाल के लिए रखा गया तो वहाँ भी अत्याचार और शोषण देख कर दंग रह जाता है वह 'फेंकन' की घरवाली का यौन शोषण देखता है किवाड़ की झिर्री से ''पांडे और पंडाइन ने उस औरत को हाथो से पकड़ रखा था और पांडे का साला उसे दबोचे हुए था बाप रे! क्या एक औरत खुद अपने सामने एक दूसरी औरत का बलात्कार करवा सकती है।''[15] सवर्ण जाति का पुरूष असवर्ण या कहे नीच जाति के साथ संबंध स्थापित नहीं कर सकता है क्योंकि वह ऊँच जाति से है पंचायत ने फैसला सुना दिया वह ऐसा कुकर्म कर ही नहीं सकता।

काली जब अपनी मजदूरी के पैसे मांगता है तो 'सुन्नर पांडे' अभी ना होने का बहाना बनाता है तभी काली सोचता है कि ''हक की कमाई मँागने पर ठेकेदार के पास पैसे नहीं हैं और हराम की कमाई डकारने वाले दुराचारी लुटेरे परशुराम के लिए पंद्रह हजार! आग घुल रही है काली के मन में। क्या वह इन हमदम खोरो की बेगार करने और उनकी गॉड़ धोने के लिए ही पैदा हुआ है? ''[16] काली जो मजदूरी करके अपना पेट भरता था आज उसका इतना शोषण हो चुका है कि उसे अंधेरे के सिवा कुछ दिखाई नहीं देता है जमींदारों, ठेकदारों, पुलिस वालों ने उसका उसके परिवार का भरसक शोषण किया है। विवशताओं ने मजबूर कर दिया उसे डाकू बनने के लिए, नारायण उसे ना मिला होता तो शायद वह डाकू नही बन पाता क्योंकि नारायण के साथ से ही पांडे के बच्चे को अगवा करके डाकू की श्रेणी में आ खड़ा होता है। चाइनीज पिस्टल से खेलने के दिन थे उन्हें वह जवानी में असली की पिस्टलो से पूरा करना सीख गया था। पाप–पुण्य क्या है, नैतिक अनैतिक क्या है? यह सब व्यवस्थित जीवन जीने वाले सफेद पोशो के परोपदेश मात्र थे उसके लिए अब। जिसे मजबूर कर दिया था दल–दल में जाने के लिए। वह इनामी डाकू बन गया। बीसवीं सदी के नवम दशक में थारू जनजाति के जीवन पर लिखा गया उपन्यास आदिवासियों के जीवन व्यथा को चित्रित करता है संजीव जी आदिवासियों की बेबस जिंदगी की तस्वीर पाठको के सम्मुख लाते हैं। मजबूरी में हत्यार उठाने के लिए मजबूर हैं जब वह नरैना (नारायण) के साथ पांडे के बच्चे अल्ताफ का जोर–जोर से रोना देखता है तो कहता है कि इसकी मां की क्या हालत होगी काली नरैना से कहता है ''हमने लाख चाहा कि ऐसा न हो, जब–जब हम पर जुल्म हुआ, मन बेकाबू हुआ, हमने मन को जब्त ही किया–हे माता भवानी, हे देवता पित्तर, हे सोमेष्वर देख, हमको कुमारग से बचाना लेकिन आखिरकार आज..... ' उसकी घिग्गी बँध गई थी, 'हमने नहीं चुनी थी यह जिंदगी। नहीं बने थे हम इन राहों के लिए फिर भी देखो.....कैसे धकेल दिए गए।''[17] काली सही कहता है वह इन राहों पर बिल्कुल नहीं जाना चाहता था लेकिन जमींदारों, ठेकदारों, पुलिस वालों ने उसकी नही सुनी तभी वह डाकू बनने के लिए विवश हो गया। इन लोगों के कारण ही आज वह इनामी डाकू हो गया है। डाकू बनने के बाद भी वह पांडे को माफ कर देता है क्योंकि वह भी काली के पास डाकू बनने आता है लेकिन काली उसकी हर तरह से सहायता करते हुए खोया हुआ मान–सम्मान व आर्थिक सहायता करके उसे इस दल–दल में जाने से रोक देता है इसी तरह वह डाकू बन कर गरीब असहाय लोगों की सहायता करता है जरूरतमंद लोग पुलिस के पास ना जा कर डाकूओं के पास जाते हैं उनकी हर तरह से सहायता करते हैं जबकि पुलिस उन पर अत्याचार करती है डाकुओं के पते बताने के लिए, बंदूक,कारतूस के लिए उन्हें आय दिन परशान करती है चाहे वह पता बता दे या न बतायें उनका एनकांउटर होना तय होता है।

अतः किस तरह एक सीधा–साधा आदिवासी अपनी दो जून की रोटी के लिए पुलिस, ठेकेदारों, मालिकारों की गुलामी करता है फिर भी शान्त रहता है लेकिन परशुराम और काली जैसे लोगो में चेतना आती है जो हत्यार उठाने के लिए विवश होते हैं जो अपने अधिकारों के लिए ही हत्यार उठाते हैं अपनी मां, बहन, बेटी की इज्जत को बचाने के लिए विवश हो जाते हैं।

संजीव जी का उपन्यास आदिवासी चेतना से परिपूर्ण उपन्यास है इस का उद्देष्य है कि आम जन यह जान सके कि किस तरह बिहार पष्चिम चंपारण के थारू जनजाति के आदिवासी लोग पुलिस व डाकुओं द्वारा शोषण का शिकार है पुलिस के खौफ से थारू लोग डाकुओं की मदद करते हैं इस आरोप में पुलिस असहाय निर्दोष आदिवासियों को पकड़कर अत्याचार करती है बिसराम के शब्दों में स्पष्ट दिखायी देता है जब उसकी पुत्री को सांप काट लेता है तो वह विलाप करते हुए कहता है''हमार तो हर तरीका से मौवत लिखल बा, ए बेटी! जिमींदार से, डाकु से, देवता–पिता से, भूत–भवानी से, पुलिस–लेखपाल से .....अरे आ!'' सच में एक बाप की रूलाई जो अपनी बच्ची तक को बचाने में असमर्थ है पुलिस का भय भी रहता है जब वह नदी में उसका क्रिया कर्म करने जाते हैं तो कहता है जल्दी–जल्दी करो यहाँ रूकना ठीक नही होगा पुलिस को शक हो जायेगा।''[18] बडी बिड़म्बना है जो रक्षा करने के लिए तैनात किया जाता है वही थारू आदिवासियों के लिए भक्षक बना हुआ है एक तरफ डाकुओं का डर तो दूसरी तरफ पुलिस का, जो मजबूर करता है आवाज उठाने के लिए। जो जंगल में कूदने के लिए विवश करता है और जिस जंगल से पुनः वापस आना असंभव है।

'जंगल जहाँ शुरू होता है' में राजनीतिक व प्रशासनिक बदहाली की पोल खोली है जो आए दिन जमींदारी प्रथा समाप्त होने की दुहाई देते हैं उनकी समाप्ति नहीं हुई है बल्कि शोषण, अत्याचार, उत्पीड़न करने का तरीका मात्र बदला है नेताओं के वादे सरासर झूठे हैं बेमानी हैं, राजनीतिक व प्रशासनिक गठजोड़ के कारण सरकारी रिकॉर्ड में प्रगति एवं विकास दर्ज रहता है लेकिन सच्चाई में ये आदिवासी लोगों से बहुत दूर है वे इनसे आज भी वंचित हैं। संजीव जी ने उपेक्षित थारू–जनजाति की मार्मिक व प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति उपन्यास में की है। किस प्रकार लोकतंत्र की जड़ो को तलाशता यह इतना बड़ा समुदाय आज भी सभी सुख–सुविधाओं से वंचित है आज भी अभावों भरी जिंदगी जीने के लिए विवश हैं इस उपन्यास के माध्यम से संजीव जी ने लोगों

की त्रासदी व शोषण को आम जन समुदाय के समक्ष रखने का सफल प्रयास किया है।

प्रो0 यशवंतकर लिखते हैं ''संजीव जी ने आविासियों की दशा और परिणामों का विवेचन मानवीय संवेदना के परिप्रेक्ष्य में किया है अर्थात् उपन्यासकार ने उनकी त्रासदी और संघर्ष को वाणी देने का प्रमाणिक प्रयत्न किया है।''[19]

इस तरह आदिवासी के जीवन को लेकर विभिन्न विद्वजनों ने अपने–अपने मंतव्य दिये हैं। आदिवासी के प्रति सजग व चेतना लाने के लिए सरहानीय कार्य साहित्यकार कर रहे हैं।

अतः अज्ञान व अशिक्षा के कारण सभी सुख सुविधाओं से वंचित थारू आदिवासी गरीबी, कुपोषण से जूझते हुए अभाव ग्रस्त जीवन जीने के लिए मजबूर हैं जिसका वर्णन 'जंगल जहाँ शुरू होता' में स्पष्ट दिखायी देता है किस तरह स्त्री–पुरूष दोनों ही प्रताड़ित हैं व गरीबी भरा जीवन जी रहे हैं। सच्चे अर्थों में संजीव जी ने लोकतंत्र की जड़ों को तलाशने का कार्य किया है जो थारू जनजाति के जीवन संघर्ष को देख कर स्पष्ट कर देता है। उसके जीवन की गाथा गाता उपन्यास 'जंगल जहां शुरू होता है' वास्तविकता को उजागर करता है।

संदर्भ सूची

1. पृष्ठ 123 धार), लेखक संजीव
2. पृष्ठ 87 धार)
3. पृष्ठ 141 धार)
4. पृष्ठ 107 धार)
5. पृष्ठ 75 परिशोध, हिंदी विभाग पंजाब विष्वविद्यालय चण्डीगढ़ अंक 63, वर्ष 2018–19 , मुख्य संपादक –नीरजा सूद संपादक गुरमीत सिंह आई एस एस एन 2347–6648 द्वारा प्रमाणित क्रमांक 31)
6. पृष्ठ 19–20 सावधान नीचे आग है) लेखक संतीव
7. पृष्ठ 73 (गोली) सावधन नीचे आग है)
8. पृष्ठ 119 (8 जनवरी) सावधान नीचे आग है)
9. पृष्ठ 279 आदिवासी सभ्यता एवं संस्कृति, माधवी त्रिपाठी, दिनेश शर्मा, प्रकाशः वाईकिंग बुक्स/शोरूमः जी 13,एस0एस0 टॉवर, धामाणी स्ट्रीट, चौड़ा, जयपुर– 302003 आई सी बी एन 978–93–85528–23–1 , प्रथम संस्करण – 2016
10. पृष्ठ 8 जंगल जहाँ शुरू होता है
11. पृष्ठ 27 जंगल जहाँ शुरू होता है
12. पृष्ठ 182 जंगल जहाँ शुरू होता है
13. पृष्ठ 216 जंगल.....)
14. पृष्ठ 204 जंगल जहां .....)
15. पृष्ठ 92 जंगल जहां ...)
16. पृष्ठ 93 जंगल.....)
17. पृष्ठ 96–97 जंगल जहाँ.....)
18. पृष्ठ 21 जंगल.....)
19. पृष्ठ 30 भारतवाणी (जून 2011) लेखक–प्रो0 यशवंतकर संतोष कुमार लक्ष्मण,)